रसो वै सः

माधोदास मूंधड़ा

भारतीय विद्या मन्दिर

प्राक्कथन

(प्रथम संस्करण)

भारतीय संग्रहालय के निदेशक के रूप में मेरे कलकत्ता प्रवास की अवधि में एक महत्त्वपूर्ण संयोग घटित हुआ, वह था डॉ० (अब स्वर्गीय) प्रभाकर माचवे द्वारा भारतीय संस्कृति संसद से न केवल परिचय अपितु वहाँ के कुछ विद्वानों व प्रबन्धकों से निकटता स्थापित कराना। ऐसा प्रतीत हुआ कि संभवतः दिवंगत होने के पूर्व संसद सम्बन्धी कुछ उत्तरदायित्व वह मुझे सौंप गए थे। यद्यपि अपनी अल्पज्ञता वश मैंने उस विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न विभूति की इच्छा को गम्भीरता से नहीं लिया, किन्तु संसद के दायित्व का निरन्तर बोध कराते है। मैं भी राष्ट्रभाषा के माध्यम से साहित्य, कला और संस्कृति की अजस्त्र त्रिवेणी स्वरूप भारतीय संस्कृति संसद से अपने दूरस्थ नैकट्य को सौभाग्य सूचक मानता हूँ।

इसी दिव्य संयोग की शृंखला में संसद के कार्यकलापों के प्रेरणास्त्रोत श्री माधोदासजी मूंधड़ा का मुझ पर विशेष स्नेह रहा है। संसद में मेरे कुछ व्याख्यान उन्होंने सुने, विचार और तर्क-वितर्क हुआ और उन्होंने गोष्ठी-

परिचय को स्थायित्व प्रदान करने का संकल्प ले लिया। फलतः अपनी पुस्तक का अन्तिम आलेख ले वह कलकत्ते से दिल्ली पहुँच गए। मेरे लिए यह बड़े संकोच का अवसर है कि पुस्तक की भूमिका लिखूँ किन्तु उनकी आत्मीयता और स्नेह की बाढ़ ने संकोच प्रवाहित कर दिया और सहमति के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह गया।

वैदिक सूक्ति है 'अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः ईड्यो नूतनैरिव' अर्थात् अग्नि की उपासना पूर्व ऋषियों ने की और नए मुनि भी करते रहेंगे। अग्नियज्ञ के समान ज्ञानयज्ञ भी है जिसमें मनीषी अपने अध्ययन, अनुशीलन और चिन्तन की आहुति डालकर स्वयं तो कृतकार्य होता ही है, साथ ही लोकोपकार अथवा लोक-मंगल की भी सिद्धि करता है। इसी परम्परा में बहुज्ञ, बहुश्रुत, एवं सुधी चिन्तक श्री माधोदासजी मूँधड़ा की प्रस्तुत कृति है।

इसके छः अध्यायों में 'शेषे षष्ठी' का स्मरण करते हुए भारतीय चिन्तन धारा के विशिष्ट सोपानों को षड् दर्शन की भाँति मानता हूँ। वेद, गीता, भागवत, धर्म एवं कला के सौंदर्य के माध्यम से परम रस तत्त्व तक पहुँच गए हैं। इनमें ज्ञान, वैराग्य, कर्म, भक्ति और लालित्य सभी पक्षों को आलोकित किया है। ये निबन्ध गम्भीर चिन्तन और अनुभूति के समन्वय से निस्सृत हैं। षड्चक्र की तीलियों की भांति एक ही केन्द्र बिन्दु अर्थात् श्रीकृष्ण की सत्ता से प्रस्फुटित हो एक विशिष्ट आध्यात्मिक आभा मंडल की परिधि का निर्माण करते हैं।

इन छः अध्यायों में पारमार्थिक चिन्तन के साथ जीवन के शाश्वत मूल्यों की भी व्याख्या, प्रतिष्ठा और अपरिहार्यता को भी दिग्दर्शित किया है। भारतीय दर्शन को आधार मानते हुए कहीं-कहीं पाश्चात्य दर्शन के माध्यम से भी मन्तव्य को पुष्ट किया गया है।

धर्म और सम्प्रदाय का विवेचन करते हुए विद्वान ने कितनी सरलता से यह सत्य उद्घाटित किया है– 'धर्म भूमि है उस पर नाना पथ हैं। सम्प्रदाय ही पथ हैं, वे भूमि नहीं हैं। वे बनते, बदलते और मिटते हैं।'

इसी प्रकार कला की समीक्षा भी बड़ी सार गर्भित बन पड़ी है। 'यदि वह (कला) यथार्थ का ही चित्रण है तो उसमें कलाकार की सर्जनात्मक चेतना की अभिव्यक्ति नहीं होगी। उसमें सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की प्राणवत्ता नहीं रहेगी।' अपने विचारों एवं भावों को विराट चेतना के स्तर पर अभिव्यक्त करना कला की श्रेष्ठतम उपलब्धि है।'

अध्याय के आरम्भ में कला की व्युत्पत्ति दी है। इसमें मेरी यह संभावना भी विचारणीय है 'कं आनन्दं लालयति इति कला' अर्थात् जो आनन्द की वृद्धि करती है, वह कला है। ललित शब्द की वृद्धि करने से आनन्द के साथ लालित्य का संवर्धन भी अपेक्षित हो जाता है।

लेखक ने गीता-सार विवेचन के प्रस्तुतीकरण में इस अप्रतिम महत्त्व के ग्रन्थ पर मन्तव्य व्यक्त किया है कि यह ग्रन्थ मानव मात्र के उद्धार तथा उसके कर्त्तव्यों को बतलाता है, इस दृष्टिकोण से यह ग्रन्थ किसी भी सम्प्रदाय, देश, समुदाय तथा किसी वर्ग विशेष का नहीं है। यह समस्त मानवजाति के हित का है और उसके लिए है। श्री अरविंद ने भी गीता पर अनेक निबन्ध लिखते हुए मत व्यक्त किया है कि गीता का अध्ययन किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर न किया जाए। अन्यथा व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार उसका अभिप्राय निकालने लगेगा। यह तो एक दीप स्तम्भ की भाँति है जिससे हम स्वयं को आलोकित करें न कि अपने स्वयं के विचार अथवा पूर्वाग्रह उसकी व्याख्या में थोपें।

भारतीय दर्शन के आदि व अजस्त्र स्रोत वेदों के महत्व पर विचार व्यक्त करते हुए सार रूप में लेखक का कथन कितना स्पृहणीय है, 'वेदों में उस तत्त्व का दर्शन प्रस्तुत हुआ है जो मानव मात्र को असत् से सत् की ओर, अंधेरे से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाता है। इस परम तत्त्व के साक्षात्कार से परमानन्द की अनुभूति प्राप्त होती है।'

भागवत, गीता व रसो वै सः सम्बन्धी निबन्ध श्री मूंधड़ाजी की इष्ट प्रवृत्ति के द्योतक होने के साथ ही विश्लेषण, चिन्तन एवं भक्ति के समन्वय के माध्यम से परम सत्ता को हृदयंगम करने के भिन्न सोपान हैं।

मुझे इन सभी निबन्धों को आद्योपान्त पढ़ आत्यन्तिक सुखानुभूति हुई। आशा है भारतीय संस्कृति कला व दर्शन के अनुष्ठाताओं को ये लेख सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक चेतना के उन्नयन के लिए प्रेरित व स्पन्दित करने में समर्थ होंगे और यही श्री मूंधड़ाजी के दीर्घचिन्तन, अध्ययन, अनुशीलन और अनुगुणन का सुफल होगा।

मैं उनके दीर्घायुष्य की कामना करता हुआ पुस्तक प्रणयन के साथ परिवक्व ज्ञान व अनुभव की महत्वपूर्ण थाती सौंपने के लिए उन्हें बधाई व साधुवाद देता हूँ।

-डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा
(महानिदेशक एवं कुलपति)
राष्ट्रीय संग्रहालय एवं संस्थान, नई दिल्ली

१०.२.९२
नई दिल्ली